आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति के स्वरूप को प्रभावित करने में ब्रिटिश कारक की महत्वपूर्ण भूमिका रही। ब्रिटिश शासन के कई ऐसे पहलू थे, जिन्होंने भारतीय संस्कृति की दशा एवं दिशा को प्रभावित किया। इन पहलुओं को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है-

■ **भारत की जनांकिकीय संरचना पर ब्रिटिश शासन का क्या प्रभाव पड़ा?**

प्राचीन काल एवं मध्यकाल में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जनसंख्या की आवाजाही होती रही तथा इसका कारण आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों रहा था। यह प्रक्रिया ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भी चलती रही थी। ब्रिटिश शासन के अंतर्गत विभिन्न कारणों से जनसंख्या प्रवास को प्रोत्साहन मिला। प्रथम, ब्रिटिश शासन ने देशी उद्योग एवं रोजगार को धक्का पहुँचाया। अत: प्रभावित समूह अन्य क्षेत्रों में पलायन करने के लिए विवश हुए। इसलिए इस काल में लोग अनुबंधित श्रमिक के रूप में देश से बाहर गए, बल्कि देश के अंदर भी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जनसंख्या का प्रवास हुआ। जनजातीय समूह के लोग अनुबंधित श्रमिक के रूप में चाय एवं कॉफी बागान में भेजे गए। उसी प्रकार, सूती वस्त्र, हस्तशिल्प उद्योगों के पतन के कारण उत्तर प्रदेश से रोजगार के लिए लोगों का पलायन बम्बई, मालेगाँव तथा भिवंडी जैसे क्षेत्रों में हुआ। दूसरे, नवीन यातायात के साधन ने इस प्रक्रिया को और भी प्रोत्साहन दिया। उदाहरण के लिए, भारत की कुछ घुमक्कड़ जनजातियों के लोग बम्बई की ओर पलायन कर गए और वहाँ गोदी श्रमिक (Dockyard Workers) के रूप में ढल गए। तीसरे, व्यवसाय एवं सरकारी सेवा से लाभ उठाने के लिए भी कुछ लोग एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पलायन कर गए। गुजरात के पारसी, बम्बई में स्थापित हो गए। गुजरात के कुछ व्यवसायी कलकत्ता की ओर भी पलायन कर गए। राजस्थान से कुछ मारवाड़ी कपड़े के व्यापार का लाभ उठाने के लिए पहले बंगाल के मुर्शिदाबाद एवं फिर कलकत्ता में स्थापित हो गए। उसी तरह पंजाबी समुदाय के लोग पूरब में दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद तक फैल गए। इस तरह प्रत्येक क्षेत्र एक दृष्टि से लघु भारत की तरह दिखने लगा। भारतीय उपमहाद्वीप क्षेत्रीय, जातीय तथा सांप्रदायिक विभिन्नता का सतरंगी मेल बन गया।

■ **ब्रिटिश ने भारतीय संस्कृति पर किस प्रकार का प्रभाव छोड़ा?**

ब्रिटिश के दीर्घकालीन शासन काल में भारतीय संस्कृति का प्रभावित होना बहुत ही स्वाभाविक था। गौर करने वाला तथ्य यह है कि भारत से संपर्क के काल में ब्रिटेन स्वयं भी आंतरिक परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहा था तथा सामंती संरचना से पूँजीवादी संरचना में रूपांतरित हो रहा था। वस्तुत: अन्य महाद्वीपों में पश्चिमी शक्तियों का अनुभव अलग रहा था। उदाहरण के लिए, लैटिन अमेरिका तथा अफ्रीका में पश्चिमी शक्तियों ने वहाँ की देशी संस्कृति को मिटा दिया।

परंतु भारत की संस्कृति इतनी प्राचीन थी अथवा इसकी जड़ इतनी गहरी थी कि ब्रिटिश इसे मिटा नहीं सकते थे। अत: ब्रिटिश ने उसमें अंत:क्षेपण (Intervention) कर उसमें कुछ परिवर्तन लाने का प्रयास किया। यह अंत:क्षेपण (Intervention) की प्रक्रिया निम्नलिखित रूप में व्यक्त हुई। प्रथम, 18वीं सदी में विलियम जोंस एवं कोलब्रुक जैसे प्राच्यवादी ब्रिटिश लेखकों ने भारतीय संस्कृति का अन्वेषण एवं अध्ययन किया तथा अपनी रूचि के अनुकूल उसकी व्याख्या प्रस्तुत की। प्राच्यवादी विद्वानों के द्वारा भारतीय संस्कृति की मौलिक पहचान धर्म को माना गया तथा प्राचीन भारत को संत महात्माओं का देश करार दिया गया। आगे 19वीं सदी में ब्रिटेन में उदारवादी तथा उपयोगितावादी चिंतकों का उद्‌भव हुआ। वे भारतीय संस्कृति के कट्टर आलोचक के रूप में उभरे तथा उन्होंने भारत में सुधार एवं परिवर्तन की माँग उठाई। फिर 19वीं सदी में भारत में अंग्रेजी शिक्षा को लागू किया गया। इसके माध्यम से भारतीयों का एक वर्ग पश्चिमी विचारधारा के संपर्क में आया।

पाश्चात्य विचारधारा पर यूरोपीय प्रबोधन का प्रभाव था। यूरोपीय प्रबोधन का बल निम्नलिखित पहलुओं पर था-

1. तर्कवाद 2. मानववाद 3. व्यक्तिवाद 4. धर्मनिरपेक्षता

भारतीय बुद्धिजीवी भी इन विचारों के संपर्क में आए तथा यूरोप की बौद्धिक उपलब्धियों से बहुत प्रभावित हुए। इन बौद्धिक उपलब्धियों के प्रभाव में उन्होंने भारतीय संस्कृति की कमजोरी को उद्‌घाटित किया तथा उन्हें दूर करने का प्रयास किया। वहीं दूसरी तरफ भारतीय बुद्धिजीवी, उदारवादी एवं उपयोगितावादी चिंतकों के द्वारा जो भारतीय संस्कृति की निरंतर आलोचना की जा रही थी, उससे आहत हुए। उनमें उन्हें पश्चिमी नस्लवादी अहंकार नजर आया। फिर, उनके मन में एक प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। इस प्रतिक्रिया के कारण उन्होंने अपनी संस्कृति के कुछ सकारात्मक एवं बेहतर पक्ष को उद्‌घाटित करना भी आरंभ कर दिया। इस प्रकार 19वीं सदी में भारतीय संस्कृति में सुधार की प्रक्रिया आरंभ हुई तथा भारतीय संस्कृति का आधुनिकीकरण हुआ। इन अन्वेषकों में हम राजा

राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, महादेव गोविंद रानाडे, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, सर सैयद अहमद खाँ, दादा भाई नौरोजी आदि की गणना कर सकते हैं।

- **19वीं सदी के भारत में होने वाले समाज तथा संस्कृति में सुधार पश्चिमी विचारों के प्रभाव की उपज था अथवा उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया थी?**

यह दोनों की उपज था। राजा राममोहन राय से लेकर स्वामी विवेकानंद तक सभी में हम प्रभाव एवं प्रतिक्रिया दोनों तत्व पाते हैं। प्रभाव में उन्होंने पश्चिमी विचारों को सराहा तथा उनका अनुकरण करने का प्रयास किया, जबकि प्रतिक्रिया के क्रम में उन्होंने अपनी संस्कृति में भी 'तर्कवाद', 'मानववाद', 'व्यक्तिवाद' तथा 'धर्मनिरपेक्षतावाद' जैसे विचारों को खोजने का प्रयास किया।

फिर भी, कुछ चिंतकों में प्रभाव का तत्व ज्यादा है, तो कुछ में प्रतिक्रिया का। जिनमें प्रतिक्रिया का तत्व ज्यादा है वह पुनरुत्थानवादी हो गए। उदाहरण के लिए, हिंदू समूह के बीच आर्य समाज, वहीं मुसलमानों में फराजी एवं वहावी आंदोलन।

- **पाश्चात्य विचारों के प्रभाव का क्या लाभ एवं हानि रही?**

इसका लाभ रहा पश्चिमी विश्व एवं भारत के बीच की वैचारिक खाई को पाटना, जो पाश्चात्य विचारों के साथ संपर्क के कारण संभव हुआ। इसके माध्यम से भारतीय, पाश्चात्य प्रबोधन से परिचित हुए तथा 'मानववाद', 'उदारवाद', 'व्यक्तिवाद', तथा 'धर्मनिरपेक्षता' जैसे विचारों को समझ सके। इन विचारों ने प्रजातांत्रिक मूल्यों को प्रोत्साहन दिया तथा भारत में भी सुधार का माहौल निर्मित कर दिया।

परंतु इसका एक नकारात्मक पहलू भी था- वह था पश्चिमीकरण के प्रति अत्यधिक झुकाव। व्यक्तिवाद एवं उदारवाद की ओर आकर्षण के कारण पूँजीवाद की ओर स्वाभाविक रूप में आकर्षण बढ़ गया। उसी के साथ उपभोक्तावाद की प्रवृत्ति को बल मिला।

- **परंपरावादी विचारों के प्रभाव का क्या लाभ एवं हानि रही?**

इसका लाभ था भारतीय संस्कृति के प्रति आकर्षण एवं उसकी उपलब्धियों का उद्घाटन। इससे भारतीयों में आत्मविश्वास की भावना जगी। बंकिम चंद्र चटर्जी, स्वामी विवेकानंद, दयानन्द सरस्वती, बाल गगांधर तिलक, अरबिंदो घोष सभी उपनिवेशवाद के उपकरण के रूप में पाश्चात्य विचारधारा की खामियों को समझ पाए तथा भारतीय संस्कृति के सबल पक्ष को उद्घाटित कर भारतीय राष्ट्रवाद की चेतना को प्रोत्साहन दिया।

वहीं दूसरी तरफ भारतीय संस्कृति एवं परंपरा पर बल देने के क्रम में हिंदू विचारकों ने संस्कृति के हिंदू पक्ष पर तथा मुस्लिम सुधारकों ने इस्लाम के मूल तत्व को पुनर्जीवित करने पर बल दिया। इससे समन्वित संस्कृति की अवधारणा को धक्का लगा एवं जाने-अनजाने ही संप्रदायवाद को प्रोत्साहन मिला।

- **ब्रिटिश के द्वारा भारतीय संस्कृति की संकीर्ण व्याख्या से किस प्रकार अलगाववाद को प्रोत्साहन मिला?**

भारतीय संस्कृति की समझ न होने के कारण कुछ हद तक 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को बढ़ावा देने के क्रम में ब्रिटिश चिंतकों एवं मानवशास्त्रियों ने भारतीय परंपरा एवं संस्कृति की संकीर्ण व्याख्या कर डाली। ब्रिटिश ने भारतीय समाज का मूल आधार धर्म को माना तथा संस्कृति की व्याख्या धर्म के संदर्भ में की उदाहरण के लिए, ब्रिटिश की ओर से निम्नलिखित कदम उठाए गए। प्रथम, जेम्स मिल ने 1817 में भारत का प्रथम इतिहास लिखा और वहाँ काल विभाजन में धर्म को आधार बनाते हुए भारतीय इतिहास को हिंदू काल, मुस्लिम काल एवं ब्रिटिश काल के बीच बाँटा। दूसरे, ब्रिटिश प्रशासकों ने जनगणना में गैर-मुस्लिम, गैर-इसाई, गैर-पारसी को हिंदू संप्रदाय का नाम देकर उन्हें एक पृथक समुदाय में स्थापित कर दिया।

- **मुस्लिम समुदाय की ब्रिटिश नीति के प्रति क्या प्रतिक्रिया हुई?**

ब्रिटिश ने भारत में मुस्लिमों से सत्ता छीनी थी। अत: कुछ कुलीन मुसलमानों को ब्रिटिश के हाथों अपनी सत्ता खो दिए जाने का एहसास था। वहीं कुछ मुस्लिम किसान ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आर्थिक उत्पीड़न का सामना कर रहे थे। अत: उनमें भी आक्रोश था। फिर वह ब्रिटिश के विरुद्ध प्रतिरोध के लिए खड़े हो रहे थे, परंतु उनके पास प्रतिरोध के लिए कोई वैचारिक उपकरण नहीं था। अत: उन्होंने इस्लामी विचारधारा को अपना उपकरण बनाते हुए उसके मूलरूप को पुनर्जीवित करने की बात की। उनके लिए आदर्श स्थिति खलीफा का शासन थी, जब मुस्लिम एक ग्लोबल राज्य स्थापित करने में कामयाब रहे थे। इसलिए भारत में फराजी आंदोलन, वहाबी आंदोलन, तरीका-ए-मुहम्मदिया, सभी उपर्युक्त विचार से प्रेरित थे।

परंतु आगे पाश्चात्य विचारों के प्रभाव में मुस्लिम प्रतिरोध की एक दूसरी धारा भी विकसित हुई, जिसका प्रतिनिधित्व सर सैयद अहमद खाँ एवं अलीगढ़ समूह कर रहा था। यह मुस्लिम समाज को आधुनिकीकरण की दिशा में अग्रसर करना चाहता था। यह एक प्रगतिशील कदम था, किंतु निम्नलिखित सोच ने इस समस्त आंदोलन को अवसरवादी एवं प्रगतिहीन बना दिया। प्रथम, इन विचारकों का यह विश्वास था कि मुस्लिम समुदाय की प्रगति ब्रिटिश के सहयोग के बिना संभव नहीं है। दूसरे, इन्हें

इस बात का अहसास था कि वे भारत में अल्पसंख्यक थे, जबकि बहुसंख्यक समुदाय 'हिंदू' था। अत: उन्हें लगता था कि प्रजातांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से आगे बढ़ने पर वे सत्ता से वंचित रहेंगे क्योंकि उनके पास कम मत (Vote) होंगे। किंतु अगर उन्हें ब्रिटिश की कृपा प्राप्त हो जाएगी, तो वे हिंदू बहुमत को प्रतिसंतुलित करने में सफल होंगे।

सर सैयद अहमद खाँ ने हिंदुओं को प्रतिसंतुलित करने के लिए कौम (सम्प्रदाय) की बात की। उन्होंने संख्या के आधार पर समानता की जगह 'सम्प्रदाय की समानता' की माँग की। उनके विचार में हिंदू एवं मुसलमान दो संप्रदाय हैं तथा दोनों को किसी भी निर्णय में समान मत प्राप्त होना चाहिए। चूँकि सम्प्रदाय की पहचान का आधार भी धर्म होता है, इसलिए आधुनिक शिक्षा की उपज होने के बावजूद भी अलीगढ़ आंदोलन ने धर्म को ही आधार बनाकर हिंदुओं से समानता की माँग की। इस प्रकार हिंदू पुनरूत्थानवादी समूह तथा आधुनिक शिक्षा प्राप्त समूह दोनों के प्रतिरोध का आधार धर्म ही बन गया। इसने भारत में सैकड़ों वर्ष पूर्व से चली आ रही समन्वित संस्कृति की अवधारणा को धक्का पहुँचाया।

■ **धर्म एवं संस्कृति में क्या संबंध होता है?**

संस्कृति एक व्यापक अवधारणा है। इसमें खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, धर्म, जीवन दृष्टिकोण, कला, साहित्य सभी शामिल होते हैं। धर्म उनमें केवल एक होता है, किंतु दु:खद पहलू यह है कि कुछ लोग धर्म को ही संस्कृति का पर्यायवाची करार देने लगते हैं।

■ **भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के मध्य राष्ट्रवाद एवं सम्प्रदायवाद दोनों साथ-साथ एवं सौतेले भाई की तरह क्यों विकसित हुए?**

यह अपने आप में बड़ा जटिल प्रश्न है। इसे हम यूरोपीय राष्ट्रवाद की अवधारणा एवं भारतीय परिस्थितियों के बीच उभरने वाले मूलभूत विरोधाभास के रूप में देख सकते हैं। वस्तुत: आधुनिक राष्ट्र की अवधारणा 19वीं सदी के यूरोप में विकसित हुई। मोटे तौर पर राष्ट्रवाद के निम्नलिखित लक्षण माने गए - एक विशिष्ट भौगोलिक इकाई, केंद्रीकृत शासन व्यवस्था, सांस्कृतिक -भाषायी एकरूपता। यह मॉडल पश्चिमी यूरोप में सफल रहा था जहाँ कई राष्ट्रीय-राज्य अस्तित्व में आए। यद्यपि पूर्वी यूरोप में भी इसने कुछ समस्याएं उत्पन्न कीं, किंतु जब यह एशियाई-अफ्रीकी देशों में गया, तो वहाँ की परिस्थितियों के साथ फिट नहीं बैठ सका, परन्तु यहाँ हमारे विचार का विषय केवल भारत है। भारत एक महाद्वीपीय आकार वाला देश है तथा यहाँ व्यापक सांस्कृतिक विविधताएं हैं। किंतु इन विविध ताओं के बीच भी एकता का सूत्र है जो भारत की पहचान है। किंतु ब्रिटिश के आगमन के पश्चात् भारत की सामाजिक संरचना में दरारें उत्पन्न होने लगीं। इसके लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी रहे-

1. ब्रिटिश ने भारतीय परंपरा एवं समाज के प्रति जो अपनी समझ दिखाई, वह भारत की समन्वित संस्कृति के लिए घातक सिद्ध हुई। इसने अलगाववाद को प्रोत्साहन दिया। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश ने भारत की मूलभूत पहचान धर्म को माना। भारत को विभिन्न धार्मिक पंथों में विभाजित करके देखा। वस्तुत: भारत में इस्लाम के आगमन से पूर्व कई धार्मिक पंथ प्रचलित रहे थे तथा सभी के बीच आपस में आदान-प्रदान भी होता रहा था। यथा- ब्राह्मण, बौद्ध, जैन, आर्य, गैर-आर्य पंथ। जहाँ तक 'हिंदू' शब्द का सवाल है, तो इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अरब वालों ने किया था। किंतु ब्रिटिश ने सभी गैर-मुसलमान और गैर-ईसाई समूह को हिंदू समूह घोषित कर दिया तथा उसे एक पृथक संप्रदाय तथा एक पृथक पंथ का दर्जा दे दिया, जबकि यह अपने स्वरूप में विविधता मूलक था। इसमें न तो कोई स्पष्ट पुरोहित वर्ग था और न ही कोई निश्चित नियम एवं अनुष्ठान थे। इसमें एकेश्वरवाद एवं मूर्तिपूजा, भक्ति एवं तंत्रवाद सभी का प्रचलन था।

फिर ब्रिटिश ने सभी धार्मिक संप्रदायों के बीच स्पष्ट विभाजन की रेखा खींच दी। जब 1881 में जनगणना आरंभ हुई, तो सांप्रदायिक पहचान को और भी अधिक महत्व मिला। जैसा कि हम देखते हैं कि सैकड़ों वर्षों तक साथ रहते हुए हिंदू एवं मुसलमानों ने एक समन्वित संस्कृति अथवा गांगी-यमुनी तहजीब विकसित की थी, परंतु अब दोनों के बीच पहले की तुलना में विभाजन का भाव तीव्र हो गया। यह भी एक विडंबना है कि जनगणना ने जहाँ एक तरफ राष्ट्र की चेतना को बल प्रदान किया, वहीं दूसरी तरफ सांप्रदायिक विभाजन को प्रेरित भी किया।

उसी तरह सांप्रदायिक विभाजन को जेम्स मिल के इतिहास लेखन से भी प्रेरणा मिली थी। जेम्स मिल ने भारत के इतिहास को हिंदू काल एवं मुस्लिम काल के बीच बाँटकर देखा। यहाँ भी यही ब्रिटिश पूर्वाग्रह उभरकर आया कि भारतीय जीवन का मूल आधार धर्म है।

2. 19वीं सदी के समाज तथा धर्म सुधार आंदोलन ने, जिसे भारतीय पुनर्जागरण की संज्ञा दी जाती है, भारत में आधुनिक राष्ट्रवाद के उद्भव का रास्ता तैयार किया। वस्तुत: आधुनिक राष्ट्रवाद के उद्भव के लिए क्षेत्रीय, जातीय तथा लिंग विभाजन को कमजोर करना तथा भारतीयों में एकता के भाव को मजबूत करना आवश्यक था। इस आंदोलन ने यह काम पूरा कर दिया।

परंतु चूंकि इस आंदोलन के मध्य हिंदू सुधारकों ने भारत की प्राचीन उपलब्धियों अथवा हिंदू परंपरा एवं मुस्लिम सुधारकों ने इस्लामी विरासत पर अत्यधिक बल दिया। अत: अलगाववाद को भी प्रोत्साहन मिला।

3. ब्रिटिश शासन के विरुद्ध मुस्लिम सुधारकों ने जो प्रतिक्रिया दिखाई, उसके कारण उसमें प्रतिरोध की चेतना विकसित हुई। परंतु इस प्रतिरोध ने सांप्रदायिक रंग तब पकड़ लिया, जब इन्होंने भारत में हिंदुओं से समानता हासिल करने के लिए हिन्दुस्तान की समन्वित संस्कृति की विरासत को अस्वीकार करते हुए धार्मिक पहचान पर अत्यधिक बल दिया। यह प्रवृत्ति सर सैयद अहमद खाँ के काल से आरंभ हुई तथा इसका चरमोत्कर्ष मुहम्मद अली जिन्ना की राजनीति में देखने को मिलता है। यद्यपि जिन्ना पाश्चात्य शिक्षा की उपज ही नहीं थे, अपितु पश्चिमी संस्कृति में भी रंगे हुए थे। वे अपनी व्यक्तिगत सोच में धर्मनिरपेक्ष थे, परंतु राजनीतिक अवसरवाद से प्रेरित होकर उन्होंने सार्वजनिक जीवन में संप्रदायवाद का मार्ग चुना तथा घोषित किया कि हिंदू एवं मुसलमान दोनों दो राष्ट्र हैं। अत: दोनों को पृथक भू-भाग, राष्ट्र तथा पहचान चाहिए। इससे अलगाववाद को बल मिला।

4. अलगाववाद का जवाब अलगाववाद से देने का प्रयास किया गया। मुस्लिम सम्प्रदायवाद के जवाब में हिंदू सम्प्रदायवाद उभरकर आया। इसने अपने आपको हिंदू राष्ट्रवाद के रूप में व्यक्त करने का प्रयास किया। इस क्रम में वी. डी. सावरकर ने, जो महान स्वतंत्रता सेनानी रहे थे परंतु 1930 के दशक में हिंदुत्व की राजनीति की ओर मुड़ गए थे, 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की अवधारणा रख दी। उनके विचार में राज्य एक राजनीतिक इकाई है, जबकि राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई। उनके अनुसार राष्ट्र के निर्माण के लिए स्पष्ट 'पहचान' चाहिए। उनके विचार में भारतीय राष्ट्र की यह पहचान 'हिंदू धर्म' से मिली है। उनका कहना था कि वही भारतीय राष्ट्र के सदस्य हैं जिनकी मातृभूमि एवं पवित्र भूमि अथवा धार्मिक स्थान दोनों भारत में ही स्थित हों। अत: सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा के अंतर्गत मुसलमान एवं ईसाई बाहर कर दिए गए क्योंकि उनकी पवित्र भूमि भारत से बाहर थी।

इस प्रकार भारतीय इतिहास की विरासत को जिन्ना एवं सावरकर दोनों ने अस्वीकार कर दिया। वस्तुत: सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की इस परिकल्पना ने प्रकारान्तर से मुस्लिम सम्प्रदायवादियों को ही फायदा पहुँचाया क्योंकि उनके द्वारा उठायी गई पृथक राष्ट्र की माँग मजबूत हुई।

5. 19वीं सदी के मध्य तक तो ब्रिटिश ने भारतीय संस्कृति की अल्प समझ के कारण अलगाववाद को प्रेरित किया था, परन्तु अब उन्होंने सोची समझी नीति के तहत मुस्लिम अलगाववाद को प्रेरित करना शरू किया। वस्तुत: वे उभरती हुई उग्रवादी राजनीति से भयभीत हो गए थे और उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर करने का प्रयास किया। 1909 के पृथक निर्वाचन को इसी संदर्भ में समझने की जरूरत है। 1909 से 1945 तक ब्रिटिश नीति अविरल रूप में चलती रही। इस बीच ब्रिटिश के द्वारा लाये जाने वाले संवैधानिक सुधारों में जितनी संवैधानिक रियायतें भारत को दी जातीं, लगभग उतनी ही साम्प्रदायिक रियायतें मुस्लिम लीग को।

6. एक दु:खद पहलू यह है कि जैसे-जैसे राष्ट्रवाद जनसामान्य के बीच फैलता रहा, उसी के समानान्तर सम्प्रदायवाद भी जनसामान्य के बीच प्रसारित होता रहा। जब 1929 में कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज' का प्रस्ताव पारित किया, तो उसी वर्ष मुस्लिम लीग ने 'दिल्ली घोषणापत्र' लाया। उसी प्रकार, 1942 में कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' का नारा दिया, तो लीग का नारा था 'लड़कर लेंगे पाकिस्तान'। 1937 में जब पहली बार देशी सरकारों की स्थापना हुई, तो लीग ने 1940 में लाहौर में पृथक प्रांत का प्रस्ताव लाया। फिर 1946 में जब विभिन्न पार्टियों को मिलाकर अन्तरिम सरकार का गठन हुआ, तो लीग ने कलकत्ता में दंगे फैलाए। अन्त में देश को स्वतंत्रता तो मिली, परंतु विभाजन के साथ।

7. अन्त में, 20वीं सदी में भारत में ऐसा साम्प्रदायिक उन्माद आया कि समन्वित संस्कृति हासिए पर चली गई। भारत में वैसे राजनीतिक दल अथवा समूह, जो धर्मनिरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्धता की बात करते थे, जिनमें कांग्रेस शीर्षस्थ पार्टी थी, इस धार्मिक उन्माद को रोकने में विफल रहे। इस प्रकार, भारत में राष्ट्रवाद एवं सम्प्रदायवाद दोनों सौतेले भाई के रूप में आए और दोनों ने भारत की राजनीति पर प्रभाव छोड़ा।

■ **भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान सभा ने नवीन राष्ट्र के निर्माण क्रम में भारत की सांस्कृतिक नीति को किस प्रकार पुनर्परिभाषित किया? क्या राष्ट्रवाद के पश्चिमी मॉडल को अपनाने का विकल्प हमारे समक्ष था?**

वस्तुत: राष्ट्रवाद का पश्चिमी मॉडल एक ऐसे राष्ट्र के लिए था, जो आकार में अपेक्षाकृत छोटा था तथा जहाँ कम सांस्कृतिक विविधताएँ थीं। वहीं भारत का न केवल विशाल आकार था, अपितु बहुत अधिक सांस्कृतिक विविधता थी। इतना तक कि कुछ महत्वपूर्ण ब्रिटिश प्रशासक (जॉन स्ट्रैची), चिंतक (रूडयार्ड किपलिंग) एवं विंस्टन चर्चिल जैसे राजनेता भारत के राष्ट्र बनने की क्षमता में गहरा अविश्वास रखते थे। स्ट्रैची की राय में यूरोप के देशों में आपसी फर्क इतना ज्यादा नहीं था जितना हिंदुस्तान के इलाकों के बीच था। उसने कहा कि पंजाब एवं बंगाल की तुलना में स्कॉटलैंड और स्पेन ज्यादा नजदीक हैं। रूडयार्ड किपलिंग का मानना था कि वे लगभग चार हजार वर्ष पुराने लोग हैं, अब वे स्वशासन सीख नहीं सकते।

फिर अब तक राष्ट्र एवं प्रजातंत्र का प्रयोग यूरोप में ही

हुआ था। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् एशियाई-अफ्रीकी उपनिवेशों में भारत प्रथम ऐसा देश था, जो राष्ट्र बनने तथा प्रजातंत्र को स्थापित करने की दिशा में अग्रसर था। अत: संपूर्ण विश्व की निगाह भारत पर थी।

आरंभ में भारत ने भी राष्ट्रवाद के पश्चिमी मॉडल की ओर देखा था। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के मध्य भारतीय नेताओं ने भी 'एक भाषा, एक राष्ट्र' की अवधारणा को बल प्रदान किया था। परंतु स्वतंत्रता के पश्चात् अहिन्दी भाषी राज्यों से विरोध आने लगा और उन्होंने हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने का विरोध किया। संविधान सभा ने समझौतावादी रूख अपनाते हुए हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकृति दी, परंतु साथ ही अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए सह-राजभाषा के रूप में स्वीकृति प्रदान कर दी।

यही स्थिति भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन के समय भी उत्पन्न हुई। राष्ट्रीय आन्दोलन के मध्य कांग्रेस ने भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन पर विचार किया था, परंतु विभाजन के पश्चात् अलगाववाद के भय से इसने इस विचार को छोड़ दिया, किन्तु आंध्र प्रदेश में चलने वाले आन्दोलन के कारण भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन को स्वीकृति देनी पड़ी। फिर, 1956 में राज्य पुनर्गठन आयोग की अनुशंसा पर भाषायी आधार पर प्रांतों का गठन किया गया।

फिर संविधान सभा जिन मामलों को नहीं निपटा सकी, उसने उसे भावी पीढ़ी के लिए टाल दिया। उदाहरण के लिए, कुछ मुद्दे नीति निदेशक तत्वों में शामिल कर लिए गए। यूनिफॉर्म सिविल कोड मामले को भी भविष्य के लिए टालते हुए राज्य के नीति निदेशक तत्वों के बीच जगह बना दी गई।

इस प्रकार, भारत ने राष्ट्र-निर्माण के मध्य अपने बहुलवादी एवं बहु-सांस्कृतिक चरित्र को स्वीकृति प्रदान की। इसने राष्ट्र-निर्माण का एक पृथक मॉडल तैयार किया। यह मॉडल पश्चिमी मॉडल से पृथक था तथा गैर-यूरोपीय राष्ट्रों के लिए एक नज़ीर बन सकता था। ब्रिटिश अधिकारियों में स्ट्रेची से लेकर राजनेता, चर्चिल ने एक राष्ट्र के रूप में भारत के अस्तित्व पर सवाल खड़ा किया था, परंतु भारत ने एक व्यावहारिक सांस्कृतिक नीति अपनाकर इस धारणा को झूठा सिद्ध कर दिया।

प्रश्न: क्या भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन ने भारत की राष्ट्रीय एकता को मजबूत किया? (UPSC, 2016)

वस्तुत: एक भाषा-भाषी क्षेत्र होने के बावजूद तेलंगाना के तटीय आंध्र प्रदेश से पृथक होने की घटना ने भाषायी प्रांतों की उपयोगिता पर सवाल खड़ा कर दिया तथा स्वाभाविक रूप में यह वैचारिक मंथन आरंभ हो गया कि क्या भाषायी प्रांतों का गठन एक बुद्धिमतापूर्ण कदम था?

परन्तु तथ्यों पर समग्रता से विचार किए जाने की जरूरत है। वस्तुत: स्वतंत्रता के पश्चात् भारत एक ऐसे राष्ट्र के रूप में गठित हो रहा था जिसका महाद्वीपीय आकार था तथा जहाँ व्यापक सांस्कृतिक विविधता थी। फिर विभाजन ने संघीय व्यवस्था को बहुत प्रभावित किया था तथा राज्यों के समानान्तर केन्द्र को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया गया था। ऐसी स्थिति में प्रांतों के बीच अपनी भाषायी सांस्कृतिक पहचान को लेकर आशंका उत्पन्न हुई। अब तक वे विभिन्न समूह के लोग ब्रिटिश प्रेसिडेन्सी शासन के अंतर्गत दबे पड़े थे। अत: उनके लिए स्वतंत्रता का अर्थ भाषायी-सांस्कृतिक पहचान की स्वीकृति भी थी। ऐसी स्थिति में अगर केन्द्र सरकार उस माँग को ठुकरा देती, तो फिर इस कारण पारस्परिक अविश्वास को बल मिलता था तथा यह आपसी तनाव का रूप ले सकता था।

ऐसे उदाहरण हम पाकिस्तान एवं श्रीलंका के संदर्भ में पाते हैं जब मुहम्मद अली जिन्ना ने पूर्वी पाकिस्तान के लोगों को यह संदेश दिया कि आप जितनी शीघ्रता से बंगाली को भूलकर उर्दू को अपना लें, उतना अच्छा है। परंतु इसका परिणाम हुआ 1971 में स्वतंत्र बांग्लादेश का निर्माण। उसी प्रकार, 1956 में जब भारत में भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन को स्वीकृति मिली थी, उस समय श्रीलंका तमिल लोगों पर बलपूर्वक सिंहली भाषा थोपने का प्रयास कर रहा था। अंतत: श्रीलंका, गृहयुद्ध का शिकार हो गया।

वहीं भारत सरकार ने भाषायी आधार पर प्रांतों का गठन कर व्यावहारिक बुद्धि का परिचय दिया। इसके परिणामस्वरूप केन्द्र एवं राज्य के बीच पारस्परिक विश्वास को बल मिला जैसाकि आशंका थी कि इससे मिट्टी के लाल (Son of the Soil) जैसी भावना को बल मिलेगा, वह निर्मूल सिद्ध हो गया। इसके परिणामस्वरूप बहुरंगी क्षेत्रीय संस्कृतियाँ राष्ट्रीय संस्कृति में घुल-मिल गईं।

प्रश्न: भारत की सांस्कृतिक विविधता के संदर्भ में क्या यह कहा जा सकता है कि राज्य की तुलना में क्षेत्र सांस्कृतिक इकाई को निर्मित करता है? (UPSC, 2017)

उपर्युक्त कथन भाषायी आधार पर प्रांतों के गठन की सीमा को दर्शाता है। एक राष्ट्र के रूप में भारत सांस्कृतिक विविधता को प्रदर्शित करता है। भले ही संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकृति दे दी गई हो, परंतु व्यवहार में इनके अन्तर्गत अनेक उपभाषाएँ एवं बोलियां विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त लगभग सभी प्रांतों में मिश्रित जनसंख्या रही है, इसका कारण इतिहास एवं भूगोल है *(2019 के प्रथम पत्र में उपर्युक्त प्रश्न से निकटता रखने वाला एक दूसरा प्रश्न रखा गया है 'क्या हमारे राष्ट्र में सर्वत्र लघु भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र हैं?)*।

संपूर्ण भारतीय इतिहास में आर्थिक एवं राजनीतिक अवसर की तलाश में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जनसंख्या की आवाजाही होती रही। इस कारण लगभग सभी क्षेत्रों में मिश्रित जनसंख्या देखने को मिलती है। तेलुगु समुदाय के लोग बंगाल में दिखते हैं, तो मराठी तमिलनाडु एवं केरल में तथा उड़ीसा का एक समुदाय गुजरात में। उसी प्रकार 40 लाख गुजराती मुम्बई एवं दक्षिणी राज्यों में निवास करते। एक अच्छे-खासे अनुपात में हिन्दी भाषी लोग महाराष्ट्र में बसे हुए हैं। मराठी समूह के लोगों के विभिन्न क्षेत्रों में उपस्थित होने के कारण गणेश उत्सव भारत के विभिन्न भागों में लोकप्रिय हो गया। उसी प्रकार बंगाली मूल के लोगों के कारण दुर्गा पूजा की लोकप्रियता काफी बढ़ गई है। बिहारी समुदाय की दिल्ली में उपस्थिति के कारण श्रावण के महीने में दिल्ली-हरिद्वार मार्ग पर काँवड़ियों की भीड़ देखने योग्य होती है। दिल्ली के चित्तरंजन पार्क में बंगाली समुदाय की उपस्थिति के कारण दशहरे के समय वह क्षेत्र मिनी-कलकत्ता की तरह दिखता है।

इस प्रकार, अगर सर्वत्र नहीं, तो कम से कम भारत के अधिकांश क्षेत्र में लघु भारत के दर्शन होते हैं। अगर एक तरह से देखा जाए, तो इसी सांस्कृतिक विविधता को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि महज भाषायी आधार पर प्रांतों का गठन मात्र ही विविधता की स्वीकृति नहीं है। वस्तुतः लगभग प्रत्येक प्रांत में एक अच्छी खासी जनसंख्या अन्य भाषा-भाषी समूह के लोगों की भी है और वे भी अपनी भाषायी पहचान के प्रति संवेदनशील हैं। उदाहरण के लिए, बिहार में मैथिली भाषा, बिहार एवं उत्तर प्रदेश में भोजपुरी भाषी, बंगाल में नेपाली भाषी गोरखालैंड का क्षेत्र। अतः जिस प्रकार राज्य सरकारें अपनी सांस्कृतिक पहचान के प्रति केन्द्र से संवेदनशील व्यवहार की अपेक्षा रखती हैं, उसी प्रकार राज्य सरकारों को भी क्षेत्रीय संस्कृति के प्रति संवेदनशीलता दिखानी चाहिए।

प्रश्नः भारतीय मिथक, कला और वास्तुकला में सिंह एवं वृषभ की आकृतियों के महत्त्व पर विचार करें।

(यू.पी.एस.सी.-2022, 250 शब्द)

उत्तरः प्राचीन काल से वर्तमान भारत की कलाकृतियों में देवता, मानव व पशु के जीवन का एक सम्मिश्रण देखने को मिलता है, जो मिथक होते हुए भी तत्कालीन समाज का दर्पण प्रस्तुत करते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में भारतीय कला पर सिंह (शेर) व वृषभ (बैल) का महत्व निम्नलिखित है-

सिंह का महत्व

- प्राचीन काल में सिंह (शेर) का सम्बन्ध महावीर स्वामी के जीवन में देखने को मिलता है, जो अपने आप पर विजय के प्रतीक व साहस के रूप में दिखाई पड़ता है।
- आगे अशोक के काल में शेर राजा के साहस एवं विशाल साम्राज्य का प्रतीक माना जाने लगा जिसका उदाहरण हम सारनाथ स्तम्भ पर देखते हैं।
- इसी के साथ सिंह, दुर्गा के वाहन के रूप में शक्ति, सौम्यता एवं स्थिरता का प्रतीक माना जाने लगा, जो विभिन्न मूर्ति एवं चित्रकला में देखने को मिलता है।
- सिंह के इसी साहस, सौम्यता, विशालता एवं ताकत के प्रतीक के कारण इसे हमारे नव-निर्मित संसद भवन में स्थापित किया गया है।

वृषभ का महत्व

- वृषभ अथवा बैल को प्राचीन काल में 'प्रजनन' एवं 'उर्वरता' का प्रतीक माना जाता था।
- हड़प्पा से प्राप्त कई मुहरों में 'कूबड़ वाले सांड' का अंकन तत्कालीन कृषि की प्रगति आदि को दर्शाता है।
- अशोक कालीन रामपुरवा स्तम्भ से प्राप्त बैल आकृति को बुद्ध के यौवन का प्रतीक माना जाता है।
- भक्ति के क्षेत्र में वृषभ को नंदी के रूप में भगवान शिव के वाहक के रूप में प्रतिबिम्बित किया गया है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक काल खण्ड में इन मिथकों का अर्थ भिन्न-भिन्न होते हुये भी ये मिथक हमें उस कालखण्ड की बेहतर जानकारी प्रदान करते हैं।

प्रश्नः भारतीय कला विरासत का संरक्षण वर्तमान समय की आवश्यकता है। चर्चा कीजिए।

(यू.पी.एस.सी.-2018,150 शब्द)

उत्तरः कला विरासतें, मानव विकास के आदिम सिलसिले का अटूट दस्तावेज हैं। हमारी विरासत को संरक्षित करना हमारे संविधान में एक मौलिक कर्त्तव्य के रूप में निहित है।

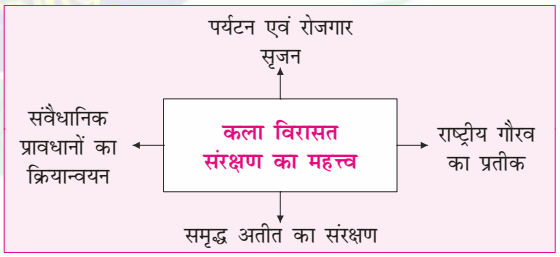

निम्नलिखित कारणों से भारतीय कला विरासत का संरक्षण आवश्यक है-

प्राचीन सांस्कृतिक धरोहरों को संरक्षित कर पर्यटन उद्योग को बढ़ावा दिया जा सकता है।

विरासत स्थल हमारी संस्कृति और आर्थिक कल्याण में योगदान करते हैं- विरासत स्थल हमें अपनी प्राचीन संस्कृति को समझने में मदद् करते हैं। विरासत पर्यटन बहुत बड़ा है और कई समुदायों की अर्थव्यवस्था को चलाने में मदद् करता है।

यह दुनिया के अन्य हिस्सों के लोगों को हमारी संस्कृति को समझने और सीखने में मदद् करता है। विरासत स्थलों को संरक्षित करने से स्थानीय अर्थव्यवस्था को बनाये रखने, रोजगार पैदा करने में मदद् मिलती है।

कला संस्कृति और राष्ट्रीय स्मारकों से राष्ट्र का गौरव जुड़ा होता है, जिसकी अनुभूति के लिए इनका संरक्षण आवश्यक है।

विरासतों के संरक्षण के लिए हमारे संविधान में अनुच्छेद-29, 49 एवं 51(A) जैसे प्रावधान हैं। वर्तमान संदर्भ में इनका संरक्षण न सिर्फ राष्ट्रीय एकीकरण में वृद्धि के लिए, बल्कि आर्थिक हितलाभ के संदर्भ में भी जरूरी है।

प्रश्नः भारत की प्राचीन सभ्यता, मिस्र, मेसोपोटामिया तथा ग्रीस की सभ्यताओं से, इस बात में भिन्न है कि भारतीय उपमहाद्वीप की परंपराएँ आज तक भंग हुए बिना परिरक्षित की गई हैं। टिप्पणी कीजिए।

(यू.पी.एस.सी.-2015, 200 शब्द)

प्रश्न का अर्थ अन्वेषणः- *इस प्रश्न का आधार ए. एल. बाशम की पुस्तक 'अद्भुत भारत' (The Wonder that was India) ने तैयार किया है। इस पुस्तक के परिचयात्मक खंड से यह प्रश्न लिया गया है। ए. एल. बाशम आधुनिक काल के एक महत्वपूर्ण भारतविद् (Indologist) रहे हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति पर बहुत ही संवेदनापूर्ण दृष्टि डाली है।*

उत्तरः प्राचीन भारत की सभ्यता उतनी ही प्राचीन है जितनी मिस्र, मेसोपोटामिया तथा यूनान की सभ्यता, परंतु अपने लचीले स्वरूप के कारण इसने आज तक अस्तित्व बनाए रखा है, जबकि मिस्र, मेसोपोटामिया तथा यूनान की सभ्यता परवर्ती काल की सभ्यता के द्वारा विस्थापित कर दी गई।

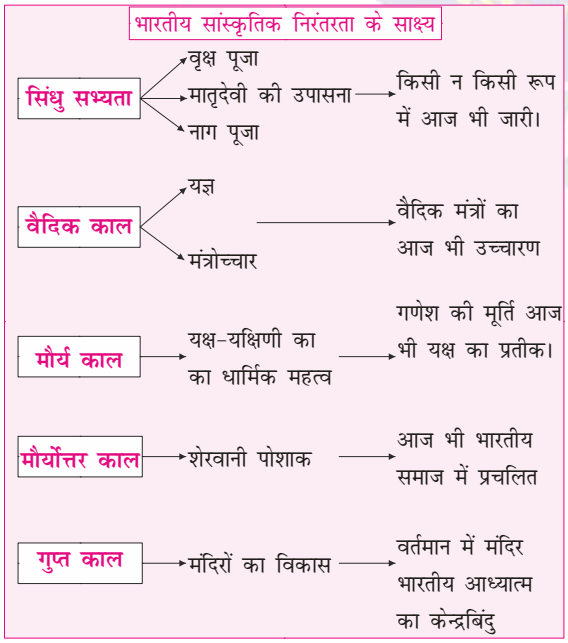

आगे मिस्र तथा मेसोपोटामिया पर इस्लामी शक्ति का कब्जा हो गया तथा उन क्षेत्रों में इस्लामी संस्कृति का तीव्र प्रसार हुआ तथा उन क्षेत्रों का लगभग इस्लामीकरण हो गया। उसी प्रकार यूनान की पेगन संस्कृति आगे ईसाई संस्कृति के द्वारा विस्थापित कर दी गई। उपर्युक्त कारणों से उन क्षेत्रों में इतना अधिक बदलाव आ गया था कि पुरातत्ववेत्ताओं की खोज से पूर्व मिस्र अथवा ईराक के किसानों को अपने पूर्वजों की संस्कृति का ज्ञान नहीं था। उसी प्रकार पुरातत्ववेत्ताओं की सहायता के बिना यूनानियों को भी पेरिक्लियन एथेंस के वैभव का ज्ञान नहीं था।

ठीक उसके विपरीत निरंतर बाह्य आक्रमण का सामना करने तथा नवीन तत्वों के आगमन के बाद भी भारतीय संस्कृति कभी विस्थापित नहीं हुई। हड़प्पा सभ्यता के पतन के पश्चात् भी प्रजनन शक्ति की पूजा से लेकर पाशुपत शिव की उपासना तक हड़प्पाई धर्म की सभी प्रवृत्तियाँ हिंदू धर्म में घुल मिल गईं। उसी प्रकार, वर्तमान भारत में भी ब्राह्मण उन मंत्रों को दोहराते हैं जो वैदिक काल में रचे गए। वस्तुतः भारत में आने वाले यूरोपीय यात्रियों ने एक ऐसी संस्कृति पायी जिसे अपनी प्राचीनता का पूर्ण ज्ञान था। भारतीय, अपनी संस्कृति का गौरवगान करते थे तथा यह दावा करते थे कि हजारों वर्षों से इसमें कोई सैद्धांतिक परिवर्तन नहीं हुआ है। आज भी पौराणिक गाथाएं सामान्य से सामान्य भारतीयों को ज्ञात हैं। वे इन पौराणिक गाथाओं के माध्यम से उन विस्मृत नायकों का याद दिलाते हैं जो लगभग ईसा के एक सहस्त्राब्दी पूर्व रहे थे।

इस प्रकार अन्य समकालीन संस्कृतियों की तुलना में प्राचीन भारतीय संस्कृति में निरंतरता बनी रही।

प्रश्नः भारत में विविधता के किन्हीं चार सांस्कृतिक तत्वों का वर्णन कीजिए और एक राष्ट्रीय पहचान के निर्माण में उनके आपेक्षिक महत्व का मूल्य निर्धारण कीजिए।(यू.पी.एस.सी.-2015, 200 शब्द)

प्रश्न का अर्थ-अन्वेषणः- *इस प्रश्न का दायरा बहुत विस्तृत है। यह अपने स्वरूप में बहुआयामिक है तथा प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान भारत तक एकता के सूत्र को खोजने का प्रयास करता है। इस प्रश्न में भारतीय राष्ट्रवाद के विशिष्ट स्वरूप की ओर भी संकेत है, जिसे 'विविधता में एकता' का नाम दिया जाता है।*

उत्तरः संस्कृति राष्ट्र-निर्माण में न केवल प्रमुख अवयव का कार्य करती है, अपितु राष्ट्र के चरित्र को भी निर्धारित करती है। अतः भारत के बहु-सांस्कृतिक रूप ने भारतीय राष्ट्र को एक पृथक चरित्र प्रदान किया है।

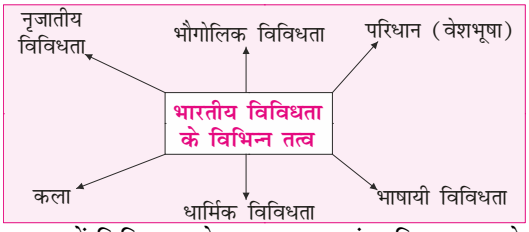

भारत में विविधता के चार प्रमुख सांस्कृतिक तत्व के रूप में हम धर्म तथा दर्शन, भाषा-साहित्य एवं कला को ले सकते हैं। धार्मिक विविधता भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अभिलक्षण रही है। जिसे हम 'हिंदू धर्म' के नाम से जानते हैं, वह किसी विशेष काल खंड में विकसित नहीं हुआ और न ही इसमें एक खास तत्व का योगदान है। आर्य तथा गैर-आर्य धार्मिक पंथों के मिश्रण से हिंदू धर्म का विकास हुआ। भक्ति, अवतारवाद तथा मूर्तिपूजा सभी गैर-आर्य पंथ की देन हैं। यहाँ धार्मिक विविधता का एक महत्वपूर्ण प्रमाण यह है कि भारत के अधिकांश भाग में देवी दुर्गा की पूजा होती है, तो कुछ क्षेत्रों में महिषासुर की पूजा भी होती है। कम्बन की तमिल रामायण का झुकाव रावण की ओर है। आगे मध्यकाल में भी एकीकरण एवं समन्वय की प्रक्रिया चलती रही। इसका ज्वलंत प्रमाण है भक्ति तथा सूफी आंदोलन। मध्यकाल में हिंदू एवं मुस्लिम दोनों ने साथ-साथ रहते हुए समन्वित संस्कृति का निर्माण किया। भक्ति एवं सूफी आंदोलन उसी समन्वित संस्कृति की अभिव्यक्ति है।

इसी प्रकार की विविधता दर्शन के क्षेत्र में भी मौजूद रही है। प्राचीन भारत में स्वतंत्र वाद-विवाद की लम्बी परंपरा रही है। अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक 'Argumentative Indian' में इस मुद्दे को उठाया है। विविधता का एक प्रमाण यह है कि हमारे कुछ प्राचीन चिंतक आत्मा को मानते हैं, तो कुछ अनात्मवादी हैं। उसी प्रकार कुछ चिंतक कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा को मानते हैं, तो कुछ उन्हें अस्वीकार करते रहे हैं।

फिर भाषा-साहित्य के क्षेत्र में विविधता, तो विदेशियों को भी अचम्भित करती रही है। भारत में अनेक भाषाएँ प्रचलित रही हैं; यथा- हिंदी, बांग्ला, उड़िया, मैथिली, मराठी, गुजराती, तेलुगु, तमिल, कन्नड़ आदि। इसके अतिरिक्त कला के क्षेत्र में कम विविधता देखने को नहीं मिलती। प्राचीन काल में स्थापत्य कला की दो प्रमुख शैलीयाँ नागर एवं द्रविड़ विकसित हुई थीं, फिर इन दोनों को मिलाकर वेसर शैलीयों का विकास हुआ। समन्वय की प्रक्रिया मध्यकाल में भी चलती रही। मुस्लिम शासन के अंतर्गत मेहराबी तथा शहतीरी शैली के बीच सामंजस्य देखने को मिलता है। उसी प्रकार मूर्तिकला, चित्रकला आदि क्षेत्र में भी अभिजात्य तथा लोकतत्व के बीच सामंजस्य दिखता है।

सबसे दिलचस्प तथ्य यह है कि स्वतंत्रता के पश्चात् हमने इस विविधता को अपनी कमजोरी बनाने के बदले उसे अपनी शक्ति बना लिया। हमारे संविधान निर्माताओं ने भी इस विविधता का सम्मान किया तथा संविधान की आठवीं अनुसूची में 14 भाषाओं को जगह दी। इसने पश्चिमी राष्ट्र के विपरीत, जिसने 'एक भाषा, एक राष्ट्र' का नारा दिया था, भारत 14 राष्ट्रभाषा पर आधारित (वर्तमान में 22 भाषाएं) राष्ट्र बना। इस प्रकार भारत ने वैकल्पिक राष्ट्रवाद का मॉडल प्रस्तुत किया तथा इसे विविधता में एकता का नाम दिया गया।

■■■

Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR